ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI TITLED No: UPBIL04292,
RNI REG.No.:UPBIL/2014/66218, SOCI.REG. No. 561/2013-14
Vol.-5, No.-I, PP-68-78, YEAR JUNE 2016

मानव–मूल्य और भतृहरि का शतक काव्य

❑ डॉ0 कृष्ण चन्द्र चौरसिया

मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलु में मूल्य है और इन्ही सें हमारे विशिष्ट मानवीय व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। मूल्य प्रत्यक्ष रूप में हमारे जीवन को सार्थक व मूल्यवान बनाते है। अतः जब हम कुछ नियमों या व्यवहार के सामान्य सिद्धान्तों के लिए कुछ परित्याग करते है, तो यही प्रत्यक्ष ''मूल्य'' कहलाते है। मूल्य परक होने का अर्थ गुणवान होता है, जिससे शक्ति प्राप्त होती है। मूल्य आधारित जीवन शैली, समय, काल इत्यादि जरूरतों को ध्यान में रखते हुए दार्शनिकों व विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के मूल्यों को निश्चित किया है।

दार्शनिकों का विचार है कि भारतीय परम्परा में अधिकांश मूल्य–विषयक धारणाएँ सामान्य दार्शनिक सन्दर्भ से पृथक नही की गई है, किन्तु अनिवार्यता विद्यमान रहती है। भारतीय दार्शनिक तत्व ज्ञान के प्रायः दो विभाग मिलते है – अध्यात्मविद्या तथा न्यायविद्या। अध्यात्मविद्या में परमार्थ की व्याख्या के प्रसंग दुःख और मोक्ष, सत् और ज्ञान का समन्वित प्रतिपादन मिलता है। सामाजिक और नैतिक जीवन, काल और कला लौकिक सुख भोग इत्यादि अपारमार्थिक होने के कारण अध्यात्मविद्या के अन्तर्गत स्वीकारा नही जाता है। प्राचीन वैदिक जन–जीवन अग्रगामी प्रवृत्तिशील एवं संचरिष्णु था। सुदूर पश्चिमान्त से पूर्व तक उत्तर भारत की विस्तृत भूमि पर वैदिक जनों के संचार और निवेश का इतिहास उस सक्रिय सफलता के युग की कर्म–परायणता और आत्मविश्वास का प्रमाण है। सफल प्रवृति से एक नियत प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था में विश्वास दृढ़ होता है और पूर्व वैदिक युग में इस प्रकार की विश्व–नियामक व्यवस्था को 'ऋत्' की आख्या दी गई। ऋत् सहज तात्त्विक व्यवस्था है और 'सत्य'उसका आनुकूल्य सृष्ट अथवा दृष्ट अर्थों में व्यवस्था है। वस्तु–स्तर पर अर्थ–सृष्टि एवं मानस–स्तर पर अर्थ प्रतिमान दोनों ही ऋत् से अनुप्राणित होने पर सत्य होते है। इसी समानान्तरता के कारण ईश्वर और ऋषि दोनों ही कवि, द्रष्टा और[1] स्रष्टा माने जाते है। वैदिक पुरूष इहलौकिक पदार्थों को प्रार्थनीय मानते हुए भी धी–गम्य ऋत् के प्रकाश को ही वरेण्य मानते थे।[2] हमारे समक्ष जो दृश्य जगत् है, जो सांसारिक प्रपंच है, उसमें ज्ञान का वास्तविक स्वरूप क्या है ?मानवीय व्यवहार में अच्छा क्या है ?बुरा क्या है ?क्या स्वीकार्य है ?क्या त्याज्य है ?इत्यादि प्रश्न मानव की जिज्ञासा तथा अन्वेषण के केन्द्र बिन्दु रहे है। अन्वेषण–बिन्दु को देखते हुए योगिराज भर्तृहरि ने मानव को पशुओं से भिन्न बतलाया है।[3] पाश्चात्य दार्शनिक अरस्तु ने भी मनुष्य को विवेकशील प्राणी कहकर उसके स्वरूप को प्रकाशित किया है। विवेक अथवा बुद्विकी प्रधानता रहने के कारण मानव विश्व की विभन्न वस्तुओं को जानने का प्रयास करता है।[4] इन प्रश्नों के सम्यक् एवं सर्वमान्य उत्तर की खोज में मनुष्य कभी–2 परस्पर विरोधी निष्कर्ष बिन्दूओं पर भीी पहुँचता है, क्योंकि ये इतने जटिल एवं दुरूह है कि अनन्त समय से मनुष्य इनकी गुत्थी सुलझाने के प्रयासों में अनवरत रूप से संलग्न है। जीवन और जगत् की उत्पत्ति एवं प्रकृति, ज्ञान के वास्तविक स्वरूप तथा मूल्य विषयक मौलिक प्रश्नों के सन्दर्भ में विभिन्न मान्यताओं ओर विश्वासों के ढांचे को ही सामान्य भाषा में दर्शन कहा जा सकता है।'दर्शन' शब्द दृश् से करणार्थक ल्युट प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है।[5] इसका अर्थ है – जिसके द्वारा देखा जाय (दृश्यतेऽनेनैति दर्शनम्)। आंग्लभाषा

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग, श्री भगवान महावीर पी. जी. कालेज पावानगर, फाजिलनगर कु ीनगर (उ.प्र.) भारत

में दर्शन शब्द के लिए फिलासफी (Philosophy) शब्द प्रयुक्त हुआ है। फिलासफी शब्द की व्युत्पत्त्यानुसार अर्थ है – ज्ञानानुराग। चिन्तन तथा मनन की क्षमता से युक्त प्राणी है। अपने मन की स्वाभाविक कौतूहल संशयात्मक प्रवृत्ति की संतुष्टि हेतु ज्ञान की खोज निकालने की उसकी सदा से इच्छा रहती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी बौद्धिक प्रतिभा के अनुरूप उस परम् सत्य ज्ञान के अन्वेषण में प्रयत्नशील रहता है। मनुष्यों के अथक प्रयत्नों और चिन्तनों का एकीकृत रूप ही दर्शन को स्वीकार किया ह । [6]

योगिराज भर्तृहरि ने चिन्तन, मनन किया। चिन्तन, मनन, निदिध्यासन के परिणामस्वरुप अथवा साक्षात्कार के फलस्वरुप शतकत्रय नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक की रचना किया। उसमें भर्तृहरि ने स्वीकार किया–

भोगे रोगभयं कुले च्युतभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
माने दैन्यभयं वले रिपुभयं रूपे जरायाभयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्
सर्वे वस्तु भयन्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाऽभयम्।।

अर्थात् विषयभोग में रोग का भय, श्रेष्ठकुल में च्युत होने का भय, धन में राजा से भय, अभिमान में हिनता का भय, बल में शत्रु का भय, सुन्दरता में बुढ़ापे का भय, विद्वता में शास्त्रार्थ का भय, गुणों में दुष्टों का भय, विद्वता में शास्त्रार्थ का भय, शरीर में मौत का भय, इहलौकिक जगत् में सभी वस्तुएं भयन्वित है। मनुष्यों के लिए केवल वैराग्य ही भयान्वित नहीं है। यहाँ स्पष्ट होता है कि जहाँ अपूर्णता है, वही भय है। अपूर्णता का तात्पर्य अज्ञान है और पूर्णता का तात्पर्य ज्ञान है।[8] मानव जीवन में ज्ञान और कर्म का सहज सामंजस्य भी है, जिससे जीवन का स्वीकार, ज्ञान की प्रगतिशील खोज एवं ऋतानुकूल श्रेयोभीप्सा समन्वित रूप में सार्थकता लाभ करते है। यहाँ 'ऋत्' शब्द अंग्रेजी के Right (सीधा, ठीक) और Rite(कर्मकाण्ड) दोनों ही शब्दों से मूलतः जुड़ा हुआ है, किन्तु उत्तर वैदिक काल में कर्मकाण्ड को ही प्रधानता दी जाने लगी थी।

यहाँ कर्म का नियामक आन्तरिक न होकर बाहरी और आनुष्ठानिक होने लगा। इसके साथ ही नित्य और अनित्य के विवेक के प्रमुखता लाभ करने के कारण भोगों की असारता और आत्मिक जीवन की परमार्थिकता का विरोध विचार का विषय बनने लगा। परिणामतः श्रेयस् और प्रेयस का भेद आध्यत्मिक आचार–दर्शन के मूल मंत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[9] यहाँ श्रेयस् और प्रेयस् के सन्दर्भ को जान लेना अत्यावश्यक है। आत्मज्ञान के द्वारा आत्मावस्थिति रूप मुक्ति ही श्रेयस् है, इन्द्रियों के द्वारा अनित्य वस्तुओं का सुख–भोग ही श्रेयस् है। श्रेयस्–साधन प्रत्यङ्गमुख आत्माभिमुख यात्रा है, जो मृत्यु लोक का अतिक्रमण करती है। प्रेयस्–साधन बहिर्मुख प्रवृत्ति है, जो बार–बार मनुष्य को मृत्यु के मुख में ले जाती है। योगिराज भर्तृहरि का वैराग्यशतक श्रेयस्–साधन तथा नीतिशतक और श्रृंगारशतक के कुछ अशों को छोड़कर प्रेयस्–साधन की ही ओर अभिमुख करता है समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान चौरासी लाख योनियों के बीच एक मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है कि जिसे कर्मयोनि तथा भोगयोनि दोनों ही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण योनियाँ भोगयोनियाँ है। भृर्तहरि के अनुसार इस योनि में नवीन कर्म करने का भी अधिकार है तथा विगत कर्मों के फल भोगने का भी अधिकार है। नवीन कर्मों के द्वारा वह अपने भावी जीवन का निर्माता भी बन सकता है। क्योंकि भर्तृहरि ने वैराग्यशतक में प्रतिपादित किया है–

**आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहवर्त्त सुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्याः पारगताविशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।[10]**

अथ च –

**भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रुपे जरायाभयम्
।शास्ते वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्तादभयम्
सर्वे वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाऽभयम् ।।**

एतादृशः भर्तृहरि के अनुसार मानव अपने सुखी जीवन के लिए सुखोत्पादक साधनों का भी अनुष्ठान कर सकता है। यहाँ ये साधन दो प्रकार के कहे गये है – श्रेयसाधन एवं प्रेयसाधन सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर नित्य एवं आनन्द स्वरूप भगवान् के आनन्द की अनुभुति प्राप्त करने का उपाय है और प्रेय साधन प्रिय लगने वाला साधन है जिसके द्वारा स्त्री, पुत्र, धन, भवन, सम्पत्ति, यश इत्यादि इहलौकिक सुखोपभोग्य सामग्रियाँ प्राप्त की जा सकती है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि ये दोनों प्रकार के साधन मनुष्य को अपनी–2 ओर खींचने का प्रयास करते है।[11] हमारे शास्त्रों में भी धर्म का लक्षण'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः' [12] किया गया है। यहाँ धारण करने योग्य साधन ही धर्म कहलाते है। उनमें भी जिस (यतः) साधनों के द्वारा अभ्युदय इहलौकिक तथा पारलौकिक की सिद्धि प्राप्त हो वे ही साधन वस्तुतः धर्म –शब्द– वाच्य माने गये है। अतः भर्तृहरि ने मानव जीवन के चरम लक्ष्य श्रेयमार्ग को ही मानव मात्र के लिए स्वीकार किया है। यह मानव के लिए उपयोगी एवं सर्वश्रेष्ठ मानव मूल्य है। इन्ही मूल्यों से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण अथवा विकास होता है। ये मूल्य प्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन को सार्थक बनाते है। जब हम कुछ नियमों या व्यवहार के सामान्य सिद्धान्तों के लिए कुछ त्याग करते है तो ये मूल्य कहलाते है। मूल्यपरक होने का अर्थ है गुणवान होना। इन गुणों से हमें शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति का स्त्रोत होने के कारण इन्हे मूल्य कहा जाता है। वास्तव में मूल्य मानव–मात्र के लिए निर्धारित हेतु है और वे विशिष्ट व्यक्तित्व के धारक है। आचार्य भर्तृहरि के अनुसार शील, सन्तोष, सत्य, प्रेम, अहिंसा, नैतिकता, लोकमंगल और लोक कल्याण की भावना के द्वारा मानवीय गुणों का विकास होता है जो मानवीय आवश्यकता की इच्छा की संतुष्टी के लिए प्रयोग में आता है। आचार्य भर्तृहरि ने मानवीय व्यवहार में मूल्य शब्द का अर्थ सहज जीवन ,शुद्ध आचरण, आत्मसंयम, इन्द्रिय निग्रह, आत्म–शुद्धि के अर्थ में प्रयोग किया है। एतादृशः मूल्य का सम्बन्ध न केवल अध्यात्मिकता से है बल्कि सत्य, अहिंसा, शुद्धता, अच्छाई एवं सौन्दर्यता को स्वीकार किया गया है। इसके द्वारा मानव में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों का परिष्कार होता है। भर्तृहरि के अनुसार मानवीय मूल्यों की पहचान विषयीपरक तथा परिस्थितिनुकूल है। मूल्य की पहचान और समीक्षा करने पर विषय के सन्दर्भ में ज्ञान ही उसकी पृष्ठभूमि है। ज्ञान ही उसका मूल आधार है। ज्ञान ही विषय और विषयी का तादात्म्य कराता है तथा उसको विविध आयामों में प्रकट करता है। जैसा कि योगिराज भर्तृहरि ने शतककाव्यों को निम्नलिखित विषयों में विभक्त मानव मूल्य को प्रतिपादित किया है – मूर्खनिन्दाप्रकरण, विद्वज्जनप्रशंसाप्रकरण, मानशौर्य प्रशंसाप्रकरण, द्रव्यमहिमाप्रकरण, दुर्जनप्रकरण, सुजन प्रकरण, परोपकारप्रकरण, धैर्य्यप्रकरण, दैवप्रकरण तथा कर्मप्रकरण, (नीतिशतकम्) श्रृंगारप्रकरण, ऋतुप्रकरण, कामिनीगर्हणा प्रकरण, वेश्या निन्दा प्रकरण (श्रृंगारशतक) तृष्णा गर्हणा प्रकरण, विषय परित्याग प्रकरण, याचक निन्दा प्रकरण, भोग परक क्षणभंगुरता प्रकरण, कालमहिमाप्रकरण, यति–नृपतिप्रकरण, मनो नियमन प्रकरण, नित्यानित्यविचारचर्याप्रकरण, अन्त स्तपोरूपशिवार्चन प्रकरण, साधक जीवन चर्याप्रकरण (वैराग्यशतकम्)।

नीतिशतकम् :– योगिराज भर्तृहरि ने मानवीय–मूल्य रूपी ज्ञान की विशिष्टता के सन्दर्भ में कहते है कि विवेकभ्रष्ट अज्ञानी का अधोपतन सैकड़ों प्रकार से होता है। [13] जो मानव साहित्य, संगीत और कला से विहीन है, वह बिना पूँछ और सींग का साक्षात् पशु है। वह घास नही खाता और जीवित रहता है– यह अन्य पशुओं का सौभाग्य है। अगर मानव रुपी पशु भी घास खाता होता तो बेचारे पशुओं को अपना पेट भरनाकठिन हो जाता। भर्तृहरि का यहां कथन है कि वास्तव में जन्म लेने के समय मनुष्य के बच्चे और पशु के बच्चे में कोई अन्तर नही होता है। दोनों ही ज्ञानहीन पशु होते है। मनुष्य जब विद्यार्जन करता है, नाना प्रकार के ग्रन्थ पढ़ता है, विद्वानों की संगति

करता है तब उसे ज्ञान होता है। वह हिताहित कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने लगता है, वह मानवीय मूल्य को समझने लगता है, तभी वह पशु से मनुष्य बनता है। जैसा कि हितोपदेश भी प्रतिपादित करता है–

आहारभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुर्भिनराणाम्।
धर्मो हि तेषामाधिको विशेषो धर्मेणहीनः
पशुभिर्समानाः।।

यही कारण है कि येागिराज भर्तृहरि ने बतलाया है कि जिन्होने विद्या को प्राप्त नही किया है, न तप को किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान का उपार्जन किया है, न सचरित्रों सा आचरण किया है, न गुण सीखा है, न धर्म का अनुष्ठान किया है – वे इहलौकिक जगत में पृथ्वी पर बोझ बढ़ाने वाले पशुवत् मनुष्य है।[14] उनके अनुसार जिनके पास ज्ञान है उन्हे माया, मोह, मद , मात्सर्य इत्यादि अवगुण बॉध नही सकते है। Do not treat with disrespect the learned who have the hight objects of life within their reach. Riches, which are as worthless as a strow are no deterrent for them. The fibre of a lotus stalk cannot restrain an elephent the upper part of whose trunk is black with the Marks of fresh MADA fluid bespeaking the restiveness of his temper.[15] भर्तृहरि 'क्षमा' नामक मानवीय मूल्य के सम्बन्ध में कहते है कि यदि व्यक्ति के पास क्षमा है तो रक्षा कवच की जरूरत नही पड़ती है। क्षमा हजार कवचों का एक कवच है जो तलवार चलाने वाले के सामने अपनी गर्दन नीची कर देता है।[16] भर्तृहरि का कथन है कि मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने बन्धु–बान्धवों और नातेदारों के प्रति उदार व्यवहार करें, अपनी सामर्थ्य भर पालन–पोषण करें ।[17] सत्संगति की महिमा अपार है। जिस तरह लोहा औररूप देखना चाहती है। नाक सुगन्धित पदार्थ सूँघना चाहती है। कान रसीली बातें सुनना चाहती है। जीभ सुस्वाद पदार्थ चखना चाहती है और त्वचा कोमल वस्तु छुना चाहती है। भर्तृहरि के अनुसार इन पंचेन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए भगवान् ने सुन्दरी नारी को बनाया है –

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेयप्रसन्नमुखम्
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु कि तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठ पल्लवरसः स्पृश्येषु किं
तत्तनुध्येयं किं नवयौवनं सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः।।[26]

अर्थात् रसिकों के देखने योग्य क्या है ?मृगनयनी कामिनियों का प्रेम पूर्ण प्रसन्न मुख। सूँघने योग्य क्या है ?उनके मुख की भाप । सुनने योग्य क्या है ?उनके वचन। स्वादिष्ट पदार्थ क्या है ?उनके ओष्ठ पल्लव का रस। स्पर्श योग्य क्या है ?उनका कोमल शरीर । ध्यान करने योग्य क्या है ?उनका नवयौवन और विलास ।

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम्।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो
ह्यहितकरणदक्षैः पंचभिर्वचितोऽसि।।[27]

अर्थात् यह कैसा मधुर गीत है, यह कैसा उत्तम नृत्य है, इस पदार्थ का स्वाद कैसा अच्छा है, यह सुगन्ध कैसी मनोहर है, इन स्तनों को छुने से कैसा मजा आता है। हे मनुष्य! तू उन पंच विषयों में भ्रमता हुआ परमार्थ नाशिनी नरकादि की साधनभूत पंचेन्द्रियों से ठगा गया है। ध्यातव्य है कि पांचों इन्द्रियाँ मानव को अपने–अपने विषयों में फंसाकर सर्वनाश कर देती है। उदाहरणतया घास और दूब खाने वाला हिरण बहुत दूर होने पर भी शिकारी के गीत पर मोहित होकर प्राण गंवा देता है। भौंरा कमल को कतर सकता है और अपने पंखों से उड़ सकता है किन्तु वह सुन्दर मनभावन गन्ध के लोभ कमल में बन्द होकर अपने प्राण गवा बैठता है जैसा कि उक्त है –

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पद्मजालम्।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त! हन्त! नलिनी गजोज्जहारः।।[28]

अर्थात् कमल की पंखुडियों में बन्द भौरा रात्रि में सोच रहा है कि रात का अन्त होगा। तदनन्तर सवेरा होगा और सूर्योदय होगा, कमल की पंखुडियॉ खिल जायेगी, उस समय मैं इस कमल के

बन्धन से निकलकर इधर–उधर घूमकर फूलों का रसपान करूगां। भौरा ऐसा विचार ही रहा था कि तभी एक जंगली हाथी तालाब में घुसकर भौरें समेत कमल के फुल को खा जाता है। यहाँ भौरें का विचार मन में ही रह जाता है एतादृशः जीवात्मा भी संसार में बैठा पंचेन्दियों रूपी विषयों के सुख भोग के लिए अनिष्टता को प्राप्त जाता है। योगिराज भर्तृहरि के अनुसार विषयों का वाहक कामदेव है।[29] और स्त्री कामदेव की पारस के मिलने से लोहा भी सोना हो जाता है, उसी तरह सत्संग से नीच पुरूष भी महापुरूष हो जाता है। Society of good men removes the dullness of a mens reason Makes his tonge truthful, enhances his respectbility over comes his sins, gives pleasantness to his heart and spreads his fame in all directons Tell me , what it does not do for men .[18] भर्तृहरि के अनुसार जीव हिंसा न करना, पर धन पर मन न चलाना, सत्य बोलना, परिस्तियों की चर्चा न करना, तृष्णा के प्रवाह को तोड़ना, गुरूजनों के आगे नम्र रहना और सभी प्राणियों पर दया करना इत्यादि शास्त्रसम्मन नैतिकता मानवीय मूल्य है।[19] इन्होने राजा को परामर्श दिया कि हे राजा! यदि तुम इस पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो प्रजा–रूपी बछड़े को कल्पलता की तरह आपको नाना प्रकार के फल देगी ।[20] यही नहीं , परोपकारियों की प्रशंसा भी किया है।[21] इन्होने नैतिक मूल्यों का भी पाठ पढ़ाया–

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं माकृथा
सत्यं ब्रह्मनुयाहि साधुपदवीं सेवस्य विद्वज्जनम्।
मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनयं प्रख्यापय स्वान्गुणान्
कीर्तिं पालयदुःखिते कुरू दयामेतत्सतां लक्षणम्।।[22]

अर्थात् तृष्णा को त्याग दें, क्षमा को सेवन करें, मद को छोड़ दें, पापों से प्रीति न करें, सदा सत्य बोलें, साधुओं की रीति पर चलें, पण्डितों की सेवा करें, माननीयों का सम्मान करें, शत्रुओं को भी प्रसन्न रखें, अपने गुणों की प्रसिद्धि करें, अपनी कीर्ति का पालन करें और दीन–दुखियों पर दया रखें– क्योंकि ये सब सत्पुरूषों के लक्षण है। इन्होनें 'धैर्य' की प्रशंसा किया और शील को सर्वोतम् भूषण स्वीकार किया है।[23] भर्तृहरि ने कर्म तथा कर्मफल को भी प्रशंसा किया है–

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रूद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।।[24]

अर्थात् जिस कर्म के बल से ब्रह्मा इस ब्रह्माण्डभाण्डोदर में सदा कुम्हार का काम कर रहा है, विष्णु भगवान दस अवतार लेने के महासंकट में पड़े हुए है, रूद्र हाथ में कपाल लेकर भीख मॉगते रहते है, और सूर्य आकाश में चक्कर लगाता रहता है, उस कर्म को नमस्कार करते है। यही नही, भर्तृहरि का कथन है कि–

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः स्वजनतामुपयाति तस्य।
कुत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पुर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ।।[2]

अर्थात् जिस मनुष्य के पूर्व जन्म के उत्तम कर्म पुण्य अधिक होते है, उसके लिए भयानक वन नगर हो जाता है, सभी मनुष्य उसके हित चिन्तक मित्र हो जाते है और सारी पृथ्वी उसके लिए रत्नपूर्ण हो जाती है। एतादृशः योगिराज भर्तृहरि ने मानव–मूल्यों की अभिरक्षा निमित्त कर्म एवं कर्मफल से जोड़ दिया।

श्रृंगारशतकम् :– योगिराज भर्तृहरि ने श्रृंगारशतकम् में सौन्दर्यात्मक, भावात्मक, नैतिक इत्यादि मूल्यों को प्रतिपादित किया है। इनके अनुसार मनुष्य की पांच इन्द्रियाँ होती है– आँख, नाक, कान, जीभ, और त्वचा। आँख का कार्य देखना, नाक का कार्य सूँघना, कान का कार्य सुँनना, जीभ का कार्य रसास्वादन और त्वचा का कार्य स्पर्श करना है। एतादृशः ऑख मुहर है। जिस तरह राजमुद्रा का अनादर करने वाले को राजा दण्ड देता है। उसी तरह कामदेव भी अपनी स्त्री रूपी मुद्रा का अनादर करने वाले को नाना प्रकार के दण्ड देता है।[30] जैसा कि भर्तृहरि ने श्रृंगारशतक में प्रतिपादित किया है–

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना–

तेऽपि स्त्रीमुखापंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुंजन्ति ये मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ।।[31]

इस श्लोक का भाव है कि कामदेव बड़ा बली है। उसने जब केवल जल, वायु और पत्ते खाने वाले मुनियों को नहीं छोड़ा तो वह घी, दूध खाने वालों को कैसे छोड़ सकता है?महामुनि विश्वामित्र जब अपना ज्ञान–ध्यान ओर विवेक –बुद्धि खोकर मेनका की रूपच्छटा पर मुग्ध हो गये । महर्षि पराशर नाव में अनजान नाविक की कन्या पर मोहित हो गये। महर्षि पराशर नाव में अनजान नाविक की कन्या पर मोहित हो गये। मारीचि और श्रृंगी जैसे ऋषि वेश्याओं के हाव–भावों पर मर मिटे, तब साधारण लोग मोहिनियों के मोह–पाश से कैसे बच सकते?[32] यही कारण है कि योगिराज भर्तृहरि ने स्त्री त्याग की प्रशंसा किया है।[3]

वैराग्यशतकम् :– भर्तृहरि के शतकत्रय के अध्ययन से विदित होता है कि नीतिशतक यदि मानव जीवन यात्रा का दिशासूचक है तो वैराग्यशतक गन्तव्य स्थल और श्रृगांरशतक इन दोनों की पूरक कड़ी है। भर्तृहरि ने जिस क्रम से जीवन–पद्धतियों का विभाजन किया है, उसी क्रम से मनुष्य मानवीय मूल्यों को प्राप्त करता है। वैराग्यशतक मानव मात्र के लिए अन्तिम पुरूषार्थ मोक्ष अथवा स्वर्गारोहण का सोपान है , जिसका यही सन्देश है – सर्प हो अथवा माला, शत्रु हो अथवा मित्र, मणि हो अथवा प्रस्तर, धनवैभव हो अथवा दरिन्द्रता, सुख हो अब अथवा दुःख सभी तुल्य है– ये सभी मानव मूल्यों के सोपान है। वैराग्यशतक में योगिराज भर्तृहरि ने तृष्णागर्हणाप्रकरण, विषय परित्याग प्रकरण, याचक निन्दा प्रकरण, भोग परक क्षणभंगुरता प्रकरण, काल महिमा प्रकरण, यति–नृपति प्रकरण, मनोनियमन प्रकरण, नित्या नित्य विचारचर्या प्रकरण, अन्त स्तपो रूपशिवार्चन प्रकरण, साधक जीवनचर्या प्रकरण नामक विषय विभाजन की दृष्टि से दस श्रेणियों में विभाजित किया है ।

भर्तृहरि के अनुसार इहलौकिक जगत् में वैराग्य की सिद्धि राग के अभाव से ही सम्भव है। अतः राग का मूलाधार तृष्णा अथवा आशा का वर्णन सर्वप्रथम किया गया है। इसके कारण सम्पूर्ण मानव–मूल्यों का लोप हेाता है। भर्तृहरि ने वैराग्य के लिए शंकर की उपमा ज्योति से दी गई है। ज्योति का काम जलाना है। भगवान शंकर मानवस्थ समस्त विषय वासनाओं की ज्योति जला डालता हैं। विषयी मनुष्य सदा मानसिक और शारीरिक कलेशों का अनुभव करता रहता है। जैसा कि शतककाव्य में प्रतिपादित किया है–

चूडोत्तंसितचन्द्रचारुकलिका चंचच्छिखाभास्वरो
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन्।
अन्तःस्फूर्जद्पारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन्
चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः।।[34]

योगिराज भर्तृहरि के अनुसार तृष्णा मनुष्य को एक से बढ़कर एक पापकर्म में लिप्त करती है।[35] हम विषयों का सुख भोगते है–इस प्रकार समझना ही भूल है। विषयों से प्राप्त होने वाले क्षणिक सुख से शरीर का ह्रास होता है। दुःख होता है सुख नही प्राप्त होता है। भोजन, विलास और सम्भोगादि से मनुष्य स्थायी आनन्द प्राप्त नही कर सकता । जितनी देर तक उनका भोग करते रहते है तब तक के लिए हमें सुख जान पड़ता हैं । वास्तव में उस वस्तु के प्राप्त करने में और बाद में उसे स्थायी बनाये रखने में असमर्थ होने के कारण दुःख ही दुःख होता है। हम विषयों को नही भोगते अपितु विषय ही हमें भोग लेते है

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता तपो न तप्त वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।[36]

भर्तृहरि की दृष्टि में आशा एक नदी सदृश है। जिस प्रकार नदी सदा किसी ऊँचे प्रदेश से शुरू होती है फिर निरन्तर नीचे की ओर गिरती हुई जिधर ढाल मिले बहती जाती है और अन्त में उसका जल समुन्द्र में जाकर लय हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के मन में आरम्भ में कोई साधारण इच्छा होती है। उसके बाद दूसरी इच्छा । फिर एक दूसरे से बड़ी इच्छा । नदी के जल के समान इच्छाओं का समूह बढ़ता जाता है,।

फलस्वरुप मानव मूल्यों की अभिरक्षा नही हो पाती है। जिसके परिणामस्वरुप वह पतनोन्मुख हो जाता है। यही नही, तरह–तरह कर इच्छाएँ उस नदी में जल के समान है। अप्राप्य वस्तुओं का लालच तूफानी लहरें है। प्राप्त वस्तुओं में आसक्ति मगरमच्छ सदृश है। क्षण प्रतिक्षण मन में उठने वाली शंकाए पानी की पंछी है। आशा रूपी नदी धैर्य रूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ फैकने वाली है। उस नदी में बडे–बड़े भयंकर भॅवर है, जिनसे पार पाना कठिन है। इस नदी को विशुद्वमन वाले योगीजन ही पार कर आनन्द उठा सकते है–

आशा नाम नदी मनोरथ जला तृष्णा तरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्क–विहगा धैर्य्यद्रुम ध्वंसिनी ।
मोहावर्त सुदुस्तराति गहना प्रोत्तुंग चिंता तटी
तस्या पारगता विशुद्ध मनसा नन्दति योगीश्वराः।।[37]

सम्प्रति श्लोक में आशा के इतन `वीभत्स वर्णन के बाद अन्त में आनन्द के किरणों की थोड़ी आभा दिखला दी गई है। इतने भयंकर नदी को भी सरलता से पार कर सकते है और उस पार आनन्द ही आनन्द है। यह काम विशुद्ध मन वाले रोगियों को ही सुलभ हो सकता है। एतादृशः जिस मन के भीतर विषयों की वासना नही होती, वही मन शुद्वहोता है। भर्तृहरि का कथन है कि संसार के सभी विषय दुःख के कारण है। सुख भी सीमित हैं और अंत में चल कर वह भी दुःखदायी सिद्ध होते है।[38] ध्यातव्य है कि जब बुरे कामों में भी दुःख, अच्छे कामों भी दुःख, स्वर्ग में भी दुःख, नरक में भी दुःख तो फिर सुख कहाँ है ?इसके उत्तर में भर्तृहरि बतलाते है कि सुख संसार में ही है, इसी लोक में है, इसी जीवन में है और इन ही वस्तुओं में है और उस सुख को पा लेना सरल है–

अवश्यं यातारश्चिततममुषित्वाऽपि विषयाः
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून।
ब्रजन्तः स्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ।।[39]

अर्थात् संसार के विषयों को चाहे जितने दिन भोगते रहे वे एक दिन छूट ही जायेगें। इस लिए हमें स्वयं ही उन्हे छोड़ देना अच्छा है। हमारी इच्छा के विरूद्ध उनका छूट जाना और अपनी खुशी से उन्हे छोड़ देना, इन दोनों में भारी अन्तर है। जब वे अपने आप छूट जायेंगें। तब उनसे हमें भारी दुःख होगा किन्तु यदि हम ही उन्हे छोड़ देंगें तो मन को शान्ति प्राप्त होगी। यहाँ कहने का तात्पर्य है कि कष्ट तब होता है जब हम समझ लेते है कि विषय–वस्तुएँ स्थायी है। विषय वस्तुएँ कदापि स्थायी नही होते है। जैसा कि गीता भी कहती है कि स्त्री, पुरुष, सन्तान सभी एक न एक दिन समाप्त हो जायेगें–

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यत्ति ।।
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःख
दुःखदा।योगिराज भर्तृहरि ने पारलौकिक अभ्युदय ज्ञान की प्राप्ति को सर्वश्रेष्ठ मानव मूल्य स्वीकार किया है। यही कारण है कि तृष्णा दूषणों के पश्चात् ऐहिक एवं आमुष्मिकभोगो के अनिष्ट की स्थिति बने रहने के कारण उनके त्याग पर बल दिया। उनके अनुसार विषयजनित सुखों का परित्याग कामों के ढंग में भलाई नही देखता हूँ। अच्छे कामों के फल के परिणाम को विचार करने से भी मुझे भम्र पैदा होता है––––––––––शरीर को सुख देने वाली वस्तुएँ अंन्त में चलकर विषयी लोगों को दुःख देने वाली है। भर्तृहरि का कथन है कि संसार के विषयों को चाहे जितने दिन भोगते रहे वे तो एक न एक दिन छूट ही जायेंगे। इसलिए हमें स्वयं उन्हे छोड़ देना अच्छा है। भर्तृहरि ने मोह के निवृत्तिमात्र से त्याग की सिद्धि स्वीकार किया है क्योंकि विषयों के सेवन से प्रायः धनिकों के समक्ष याचना करनी पड़ती है,[41] जिसके कारण स्वाभिमान नष्ट हो जाते है –

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी
गुरुतरगुणग्रामां भोजस्फुटोज्ज्वलचंद्रिका ।
विपुलबिलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनाम्।।[42]

भर्तृहरि के अनुसार किसी स्वाभिमानी व्यक्ति को अपने बराबर वालें के बीच रहकर अपमानित होते रहना उचित नही है। भोग्य पदार्थो की अस्थिरता है अतः स्थिरता रूपी वेराग्य को ग्रहण करना चाहिए–

याोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
माने दैग्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाभयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्
सर्वे वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।[43]

अर्थात् भोग के साथ रोग का भय, कुल के साथ कलंक का भय, धन के साथ हरण का भय,बल के साथ शत्रुता का भय, विद्या के साथ विवाद का भय, शरीर के साथ मृत्यु का भय बना रहता है। संसार में सभी वस्तु भयान्वित है। केवल वैराग्य ही अभय है। यथार्थतया जहाँ भी अपूर्णता है वहीं भय है। यहाँ भर्तृहरि की अपूर्णाता को अज्ञान कहना अधिक उपयुर्क्त होगा। अज्ञानवश हम वास्तविक रूप को देख नही पाते है। इनकें अनुसार धैर्य के साथ, साधना करने से चित्त की स्थिरता प्राप्त होती हैं

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामनी चंचला
आयुवार्यु विघट्टिताब्जपटली लीनाम्बुवद् भांगुरम।
लोलायौवनलालसा स्तनुभृतामित्याकलप्यद्रुतम्
योगे धैर्य्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिंविदध्वं बुधाः।।[44]

भर्तृहरि के अनुसार काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य इत्यादि विकारों को छोड़कर पारलौकिक अभ्युदय के लिए कर्त्तव्याकर्तव्य विचार करें। पारलौकिक अभ्युदय का एकमात्र साधन ईश्वर चिन्तन है। ईश्वरानन्द के समक्ष तीनों लोगों का अधिपत्य भी तुच्छ है। [45] इहलौकिक समस्त वस्तुएँ काल की महिमा से अन्विति है। एतादृशः भर्तृहरि का अन्तिम लक्ष्य आवागमन से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। इसके लिए भर्तृहरि ने वैराग्यशतकम् में मनोनियमन का वर्णन किया है–

एतस्माद्विरमेद्रियार्थगहनादायासकाकादाश्रय

भर्तृहरि के अनुसार रंग, रूप, रस आदि इन्द्रियों के विषय बीहड़ वन के समान अति दुःखदायी है। इसलिए हे मन! इन विषय–वासनाओं से एकदम मुँह फर ले । अतः मानव को कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म करते हुए प्रेय का विसर्जन एवं श्रेय का अनुसरण करना चाहिए। यही कारण है कि भर्तृहरि ने नित्यानित्यविचारचर्या, अन्तस्तपोरूपशिवार्चनप्रकरण को प्रबलता के साथ वैराग्यशतक में प्रतिपादित किया है तथा वैराग्यभाव श्रेयमार्ग के लिए आतुर दिखलायीदेते हैं –

कदा वारणस्याममरतटिनी रोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽजलिपुटम्।
अये गौरीनाथ! त्रिपुरहरशम्भो ! त्रिनयनम्
प्रसीदेति कोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्।।[47]

अर्थात् वह दिन कब आयेगा, जब मैं काशीजी में गंगा किनारे लंगोटी लगाये सिर पर हाथ जोड़े भगवान शंकर की प्रार्थना में दिनों को मिनटों के समान काट डालूँगा। यथार्थतया भर्तृहरि ज्ञान–विज्ञान में आज के वैज्ञानिकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रवीण थे किन्तु वे समझते थे कि विज्ञान अन्ततोगत्वा मनुष्य की वृतियों को पाशविक भोगवादी ही बनाता है। अतः इन्होने धर्म और अध्यात्म पर आधारित जीवन की रचना किया–

यदासीद्ऽज्ञानं स्मरतिमिरसचारजनितं
तदासर्वं नारीमयमिदमऽशेषं जगद्भूत।
इदानीमऽस्माकं पटुतरविवेकाजनदशां
समीभूता त्रिभुवनमपि ब्रह्ममनुते।।[48]

एतादृशः आत्मा को जाने विना मनुष्य को शान्ति और स्थिरता की उपलब्धि नहीं हो सकती। सफल जीवन जीने के अभिलाषी को इस पर बार–2 विचार करना चाहिए। अध्यात्म की खोज करनी चाहिए। अपने आप को पहचानने के लिए अपनी आत्मा, मनोवृत्तियों, स्वभाव तथा विचारों का निरीक्षण करना चाहिए। आत्मा के साथ जन्म–मरण, सुख–दुःख, भोग–रोग आदि की जो अनेक विलक्षणताएँ विद्यमान् है। ध्यातव्य है कि खा–पीकर इन्द्रियों के विषयों को भोग कर दिन काट लेना मात्र जिन्दगी का उदेश्य नही है। शास्त्रसम्मत वेद का वचन है– मनुर्भवः अर्थात् मनुष्य बनो। इहलौकिक जगत में पूर्ण मानव कब बनेगा। जब वह आश्रमचतुष्ट्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

रूपी पुरुषार्थ को प्राप्त कर ले। अमूल्य मानव जीवन प्राप्त करके आत्मकल्याण करना चाहिए। यही सबसे बड़ी मानव मूल्य की आयोगिता है। मानव योनि को इहलौकिक आवागमन चक्र से मुक्त हो जाना चाहिए।

भर्तृहरि के शतकत्रय के अध्ययन से विदित होता हैं कि इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया जीव की सहज प्रवृत्ति है। अपूर्ण की ओर जाना व्यक्ति की सहज अन्तः स्फूर्ति है। मानव जगत् में धर्माचरण किया करके शीलवान उत्तम व्यक्ति कहलाता है।[49] पुत्रैषणादि, पितृऋण, ऋषिऋण इत्यादि ऋणों का विमोचन समस्त सत्प्रवृत्त व्यक्तियों में होता है। वे कर्म, उपासना योग, ज्ञान, आदि द्वारा परमार्थ प्राप्ति की इच्छा करते है।[50] अतः भर्तृहरि ने स्वीकार किया कि जीव, जड़यन्त्र नही अपितु चेतन ईश्वरांश है।

इन्होनें कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया है, जिस प्रकार विधाता का भी वश नही है। भर्तृहरि के अनुसार व्यक्ति के तप से एकत्रित भाग्यफल ही वृक्ष सदृश फल देता है। यही नही इन्होने स्वीकार किया कि पूर्वजन्म में किये गये शुभकर्म विपत्तिग्रस्त व्यक्ति की रक्षा करता है। उसके लिए भयानक जंगल भी प्रधान नगर हो जाता है। अतः भर्तृहरि ने कर्म की प्रधानता को स्वीकार करके पुनर्जन्म की सत्ता को स्वीकार किया है। भर्तृहरि के अनुसार हमारा प्रत्येक कर्म एक उर्जा उत्पन्न करता है। हम जो बोते है, वही काटते है। हमारे भूल जाने से कर्मफल मिट नही जाता है। वह अकस्मात पुनर्जन्म में हमें प्राप्त होता है।[52]

एतादृशः नित्य और अनित्य के विवेक की प्रमुखता लाभ प्राप्त करने के लिए भोगों की असारता और आत्मिक जीवन की पारमार्थिकता का विषय ही भर्तृहरि का मानव मूल्य है, जिसे श्रेयस् और प्रेयस् रूपी अध्यात्मिक आचार–दर्शन के मूल–मंत्र के रूप में नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक की उपास्थापना किया। इन तीनों शतककाव्यों के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि आत्म–ज्ञान के द्वारा आत्मावस्थिति रूप मुक्ति ही श्रेयस् है, इन्द्रियों के द्वारा अनित्य वस्तुओं का सुख भोग ही प्रेयस् है। श्रेयस साधन प्रत्यङमुख आत्माभिमुख यात्रा है जो मृत्यु है। जो मृत्यु लोक का अतिकमण करती है। जब कि प्रेयसाधन बहिर्मुख प्रवृत्ति है जो बार–2 मनुष्य को मृत्यु के मुख में ले जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाख्यः । ईशावास्योपनिषद्,श्लोक सं0–8

(2) तत्सतितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योः नः प्रचोदयात्। ऋग्वेद, 2/62/10

(3) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्, श्लोक संख्या, 12 –13

(4) आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुर्भिसमाना।। हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक सं0–24

(5) वामन शिवराज आप्टे , संस्कृत –हिन्दी कोश, पृष्ठ सं0–450

(6) आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः – वृहदारण्यकोपनिपद् 2/4/5

(7) भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकम् –श्लोक सं0

(8) ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। ईशावास्पोपनिषद्–1

(9) भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकम् –श्लोक संख्या–10

(10) भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकम् –श्लोक संख्या–31

(11) अन्यच्छेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरूषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।। कठोपनिषाद् 1/2/112)

वैशेषिकदर्शन, पृष्ठ सं0 5

(13) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् , श्लोक संख्या

(14) साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तभागधेयं परमं पशूनाम्।। येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न शीलं गुणो न धर्मः।

ते मर्त्यलाकेभुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

(12) वैशेषिकदर्शन, पृष्ठ सं0 5

(13) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम्,श्लोक संख्या –10

(14) साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तभागधेयं परमं पशूनाम्।।
येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न शीलं गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलाकेभुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।
नीतिशतकम् , 12–13

(15) नीतिशतक व्याख्याकार – हरिदास वैद्य, पृ0सं0–64

(16) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम, श्लोक संख्या– 21

(17) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम, श्लोक सं0ख्या –22

(18) नीतिशतक , व्याख्याकार हरिदास वैद्य, पृ0सं0 – 82

(19) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम , श्लोक सं0 – 26

(20) राजन्! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिवं लोकममुं पुषाणं ।
तस्मिश्च सग्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः।।
नीतिशतकम् – 46

(21) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् – श्लोक संख्या – 71–72

(22) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् – श्लोक संख्या – 78

(23) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् – श्लोक संख्या – 81–84

(24) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् – श्लोक संख्या – 96

(25) भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् – श्लोक संख्या – 102

(26) भर्तृहरिकृत श्रृंगारशतकम् – श्लोक संख्या– 7

(27) भर्तृहरिकृत श्रृंगारशतकम् – श्लोक संख्या– 87

(28) श्रृगांरशतकम् व्याख्याकार हरिदास वैद्य ,पृष्ट सं0– 207

(29) भर्तृहरिकृत, श्रृंगारशतक – श्लोक सं0–88

(30) भर्तृहरिकृत, श्रृंगारशतक – श्लोक सं0–64

(31) भर्तृहरिकृत, श्रृंगारशतक – श्लोक सं0–65

(32) विश्वामित्र पराशरप्रभृतयोवाताम्बुपर्णाशना–स्तेऽपि स्त्रीमुखापंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शान्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुजन्ति ये मानवा–स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ।।
श्रृंगारशतकम् – श्लोक संख्या– 65

(33) भर्तृहरिकृत, श्रृंगारशतक –श्लोक सं0–66

(34) क. भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकम्, श्लो.सं –01
ख.शम्भुस्वयंभुहरयोहरिणेक्षणानांयेनाक्रियन्तं सततं गृहकर्मदासा
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।।
भर्तृहरिकृत, श्रृंगारशतक ,श्लोक संख्या – 01

(35) भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित्फलंत्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला। भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्तृष्णे जृम्भसि पापकर्मपिशुने नाद्यापि संतुष्यसि।।
भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकश्लोक संख्या – 02

(36) भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक,श्लोक संख्या – 07

(37) आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहवर्त्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी तस्याः पारगताविशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।।
भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक,श्लोक संख्या – 10

(38) भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक,श्लोक संख्या – 11

(39) भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक,श्लोक संख्या – 12

(40) श्रीमदभगवतगीता, 2 / 13–14

(41) भर्तृहरिकृत वैराग्यशतक, श्लोक संख्या – 21

(42) भर्तृहरिकृत वैराग्यशतक, श्लोक संख्या – 22

(43) विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो
वाताम्बुपर्णाशना– तेऽपि स्त्रीमुखापंकजं
सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुंजन्ति ये मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहोयदिभवे
द्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ।।
भर्तृहरिकृत वैराग्यशतक,श्लोक संख्या –31

*****